ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 516-519

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

किरातार्जुनीयम् में वर्णित राजनीतिक परिस्थिति

विद्या विन्द
शोध अध्येता, राम अवध यादव गन्ना, कृशक महाविद्यालय,ताखा–शाहगंज, जौनपुर (उ0प्र0) भारत

Received- 07.08.2020, Revised- 11.08.2020, Accepted - 14.08.2020 E-mail: - rajadharmendra487@gmail.com

सारांश : ***"संस्कृत विश्व की प्राचीन भाषा है। और प्राचीन काल से ही संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थ लिखे गये। भारतीय संस्कृति वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से ओत–प्रोत है। नीतिशास्त्रकारों तथा साहित्यकारों ने इस भावना को ध्यान में रख कर ही अपने ग्रन्थों में राजनीतिक शासन व्यवस्था का वर्णन किया है। महाकवि भारवि राजनीति के प्रकाण्ड विद्वान थे। उनकी यह राजनीतिज्ञता 'किरातार्जुनीयम्' के प्रथम सर्ग से ही ज्ञात होता है। इसमें भारवि की काव्यप्रतिभा, वर्णन कौशल, शब्दगौरव, राजनीतिक ज्ञान आदि गुण अभिव्यञ्जित होते हैं। प्रथम सर्ग में भारवि ने दो घटनाओं को वर्णन किया है– वनेचर द्वारा युधिष्ठिर को दुर्योधन के समाचार को देना और द्रौपदी द्वारा युधिष्ठिर के क्रोध को उभारने का प्रयत्न करना। भारवि कालीन राजनैतिक व्यवस्था का प्रतिबिम्ब निहित है जिसका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा रहा है"–***

कुंजीभूत शब्द– वसुधैव कुटुम्बकम्, शासन व्यवस्था, राजनीतिज्ञता, काव्यप्रतिभा, वर्णन कौशल, शब्द गौरव, प्रतिबिम्ब।

महाकवि भारवि कृत किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग में युधिष्ठिर द्वारा भेजे गए वनेचर ने दुर्योधन की सुन्दर राजनीतिक व्यवस्था का वर्णन किया है– राजसिंहासन पर बैठा हुआ दुर्योधन, वन में घूमते हुए भी आप (पाण्डवों) लोगों से अनिष्ट की आशंका करता हुआ कपट से जीती हुई पृथ्वी को राजनीति से अपने वश में करना चाहता है। वह बिना कुछ दिए सिर्फ कोमल बात नहीं किसी से कहता। जिसको जो कुछ भी देता है उसे आदर सत्कार के साथ देता है। बिना गुण की परीक्षा किए किसी का विशेष सत्कार नहीं करता बल्कि योग्यतानुसार सत्कार करता है।[1]

वस्तुतः किरातार्जुनीयम् महाकाव्य की राजनीतिक व्यवस्था के साथ–साथ महाकाव्य कालीन राजनीतिक व्यवस्था को दृष्टिगत करना समीचीन प्रतीत होता है। किरातार्जुनीयम् महाकाव्य में वनेचर युधिष्ठिर से कहता है कि कठोर शासन करने वाला दुर्योधन अपने छोटे भाई दुःशासन को युवराज बनाकर स्वयं यज्ञ में निश्चित रूप से पुरोहित के आज्ञानुसार हत्या से अग्नि को सन्तुष्ट करता है।[2]

अतः स्पष्ट है कि राजा धर्मसम्मत, न्यायसम्मत और अनुशासित शासन करने वाला होता था।

राज्याधिकार– महाकाव्य काल में राजा वंशानुगत होता था। राजा की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र स्वतः राज्य का अधिकारी बन जाता था। परन्तु यदि ज्येष्ठ पुत्र को गम्भीर शारीरिक दोष हो तो उस अवस्था में वह राज्याधिकार से वंचित कर दिया जाता था। अन्धे धृतराष्ट्र का उदाहरण इस विषय में उल्लेखनीय है।

महाकवि भारविकृत किरातार्जुनीयम् महाकाव्य में भी यह दर्शाया गया है कि राज्याधिकारी वंशानुगत होता था। परन्तु यदि छल से कोई राजा बन जाए तो राज्य का हित चाहने वाला या धर्म के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति कभी भी उसका साथ नहीं देता था। जिस प्रकार युधिष्ठिर को युवराज बना देने के पश्चात् भी दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, शकुनी आदि ने मिल कर कपट द्युत में युधिष्ठिर को हरा कर राज्य से निष्कासित कर दिया। परन्तु इसका समर्थन भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर आदि किसी ने भी नहीं किया। यहाँ तक कि द्वैतवन में निवास करते हुए युधिष्ठिर के पास व्यास जी स्वयं जाते हैं और शक्ति प्राप्त करने और अपने अधिकार को पुनः प्राप्त करने के लिए उत्साहित करते हैं। वे कहते हैं कि हे राजा युधिष्ठिर! तुम्हारे गुणों से पिघला हुआ मेरा मन तुम्हारे वश में हो गया है।[3] क्योंकि वैरागी और मुक्ति चाहने वाला व्यक्ति भले और धर्म के मार्ग पर चलने वाले की ओर आकर्षित हो ही जाता है। वह पक्षपात करने के लिए विवश हो ही जाता है।

हे राजन्! आप धर्म के ही मार्ग पर हैं और आप के साथ अधर्म किया गया है। क्या आप पाँचों भाई धृतराष्ट्र के पुत्रवत् नहीं हैं या दुर्योधन से अधिक गुणी नहीं हैं, जो उसने आप लोगों को छल से राज्य से निष्कासित किया सो व्यर्थ ही और बिना विचारे क्योंकि विषय की चाह मनुष्य को हृदयहीन कर देती है। हे राजन्! आपको आपका राज्य पराक्रम से ही पुनः प्राप्त होगा, अभी आपका बैरी आपसे बल, शस्त्र और सेना में अधिक बली है। इसलिए आपको बलवान होने का उपाय करना चाहिए। क्योंकि युद्ध में जय–लक्ष्मी बलवान के ही अधीन होती है। यहाँ मैं आपको

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

वही विद्या देने आया हूँ जिससे आपकी शक्ति में वृद्धि होगी। और युद्ध में आप पाण्डव विजयी होंगे। इस प्रकार व्यास जी ने हँसकर कहा, जाओ अर्जुन मेरी विद्या को साधो! और विजयी बनो।[4]

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि किरातार्जुनीयम् कालीन समाज में भी धर्म की पूर्ण प्रतिष्ठा थी। अधर्मी सशंकित रहता था और सज्जन लोग धर्म का ही साथ देते थे। राज्याधिकारी योग्य और धार्मिक व्यक्ति ही बनता था। महाकाव्यों से प्रकट होता है कि राजा स्वेच्छाचारी नहीं होता था। उसके ऊपर कई अंकुश होते थे। सबसे बड़ा अंकुश धर्म का था। राजा का प्रत्येक कार्य धर्मविहित होना चाहिए था। धर्म विरुद्ध आचरण करने वाले राजा की आज्ञा मान्य नहीं थी। प्रजा उसके विरुद्ध विद्रोह कर सकती थी उसे पदच्युत अथवा निर्वासित कर सकती थी। राजा नवीन विधि निषेध न बना सकता था। व्यवस्थाकारों ने उसे नवीन व्यवस्था बनाने का अधिकार न दिया था।

उन्हें आशंका थी कि राजा मनमानी व्यवस्था बनाकर स्वेच्छाचारी और निरंकुश न हो जाए। अतः राजा एकमात्र पुरातन धर्मशास्त्र के आधार पर ही शासन संचालन करता था। महाभारत का कथन है कि राजा परतन्त्र होता था। सन्धि–विग्रह के विषयों में उसकी स्वतंत्रता कहाँ? उसे तो प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य में उन अमात्यों से मन्त्रणा करनी पड़ती है। इसी महाकाव्य में दूसरे स्थल पर कहा गया है कि जिस प्रकार पशु मेघों पर, ब्राह्मण वेदों पर और स्त्रियाँ अपने पति पर आश्रित होती हैं उसी प्रकार राजा अपने मंत्रियों पर निर्भर रहता है। महाभारत में आठ मंत्रियों की आवश्यकता बताई गई है।

पुरोहित– देश में राज–पुरोहित का बड़ा महत्व था। वह राजा का विशेष परामर्शदाता होता था। जहाँ राष्ट्र का योग क्षेम राजा के अधीन था, वहाँ राजा का योग क्षेम पुरोहित के अधीन थां यही कारण है कि सदैव सत् के रक्षक असत् के निवारक, विद्वान, बहुश्रुत, धर्मात्मा, मंत्र विज्ञ व्यक्ति को ही राज–पुरोहित का पद दिया जाता था।

महाकवि भारवि कृत 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग में वनेचर द्वारा युधिष्ठिर के समक्ष दुर्योधन के शासन प्रबन्ध और उसकी राजनीतिक व्यवस्था का सुन्दर वर्णन किया गया है। वनेचर कहता है कि राजसिंहासन पर बैठा हुआ भी दुर्योधन वन में निवास करने वाले आपसे अपनी पराजय की आशंका करते हुए जुए के छल से जीती गई पृथ्वी को नीति से जीतने का प्रयत्न कर रहा है।[5] वनेचर दुर्योधन की साम और दान नीतियों के विषय में युधिष्ठिर को अवगत कराता है, उस दुर्योधन की निर्बाध मधुरवाणी दानरहित नहीं होती। वनेचर दुर्योधन की दण्डनीति विषयक कुशलता का वर्णन इस प्रकार करता है– इन्द्रियों को अपने वश में करने वाला दुर्योधन न धन को चाहते हुए, न क्रोध से, लोभ आदि कारणों से रहित होकर अपना धर्म राजधर्म है। ऐसा मानकर गुरुजनों द्वारा बताए गए दण्डविधान से शत्रु अथवा पुत्र में भी विद्यमान धर्म के व्यक्तिक्रम को रोकता है। दुर्योधन की धन सम्पदा और ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए वनेचर कहता है– राजाओं के द्वारा उपहार में दिए गए हाथियों का सप्तवर्ण के पुष्प की सुगन्ध वाला मद जल अनेक राजाओं के रथों एवं अश्वों से व्याप्त उस दुर्योधन के सभा भवन के प्रांगण को बहुत अधिक गीला कर देता है।[6]

कुरु राज्य के सैनिकों के विषय में वनेचर कहता है– महापराक्रमी मानरुपी धन वाले अर्थात् स्वाभिमानी धन से सत्कृत, युद्ध में कीर्ति अर्जित करने वाले, स्वार्थ हेतु परस्पर संगठिन न लेने वाले, न ही एक दूसरे से विरुद्ध कार्य करने वाले धनुर्धर लोग उस दुर्योधन के प्रिय कार्यों को प्रणपण से पूरा करना चाहते हैं। अपने राज्य के आन्तरिक कार्यों को पूर्णरूप से सम्पन्न कर लेने वाला दुर्योधन अच्छे चरित्र वाले गुप्तचरों के द्वारा अन्य राजाओं के कार्यों को भली–भाँति जान लेता है किन्तु उसका अपना मन्तव्य विधाता के मन्तव्य की भाँति अत्यधिक उन्नति वाली तथा हितकारिणी परिणाम परम्परा वाली कार्य सिद्धियों से ही जाना जाता है। दुर्योधन न केवल अपने राज्य को समृद्ध बनाने और अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने में लगा हुआ है अपितु धार्मिक कार्यों में भी वह तत्परता से भाग लेता है। वनेचर कहता है अनुलंघनीय आदेशों वाला वह दुर्योधन नव यौवन के कारण उद्दंड दुःशासन को युवराज पद पर नियुक्त करके पुरोहित से अनुमति लेकर और आलस्यविहीन होकर यज्ञों में हविद्रव्य से अग्निदेव को प्रसन्न करता है। इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि किरातार्जुनीयम् में भारवि ने वनेचर के मुख से दुर्योधन की राजनीतिक व्यवस्था का जो वर्णन किया है। वह काफी हद तक महाकाव्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था का ही रूप है।

किरातार्जुनीयम् महाकाव्य में दुर्योधन की सुदृढ़ एवं सुन्दर राजनीतिक व्यवस्था का वर्णन किया गया है। राजा के कर्तव्य, धार्मिकता, उसकी गुप्तचर व्यवस्था, युद्ध नीति एवं सैन्य व्यवस्था आदि का सुन्दर वर्णन महाकाव्य में हुआ है। वनेचर युधिष्ठिर का हितेच्छु है। अतः उसने दुर्योधन के प्रजा के प्रति सद्व्यवहार को युधिष्ठिर से यथावत् कहा। उसने यह नहीं सोचा कि सत्य कहने से युधिष्ठिर को सुख की अनुभूति नहीं होगी। न ही उसने यह सोचा कि सत्य कथन से युधिष्ठिर का उत्साह खण्डित हो जायेगा। सामान्य रूप से लोक में यह देखा जाता है कि स्वार्थी और

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

लोभी प्रवृत्ति के लोग चिकनी चुपड़ी बातें कर अपने स्वामी को प्रसन्न करते हैं। परन्तु क्षणिक प्रसन्नता के लिए बोला गया असत्य वचन भविष्य काल में स्वामी की पराजय का कारण बनता है। परन्तु वनेचर न केवल शुभचिन्तक है बल्कि वह एक आदर्श, सुयोग्य और निर्भीक गुप्तचर है। अतः वह कहता है कि हितैषी पुरुष मिथ्या और प्रिय बचन बोलने की इच्छा नहीं करते हैं।

"स सौष्ठवौदार्य विशेषशालिनीं विनिश्चितार्थमिति वाचमाददे"।[7] शत्रुओं के विनाश के लिए प्रयत्नाभिलाषी महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर एकान्त में उस वनेचर ने शब्द सामर्थ्य और अर्थ–गौरव के वैशिष्ट्य से समलंकृत एवं विशेष रूप से तात्पर्य वाली वाणी से बोला। वनेचर की वाणी की विशेषता– सौष्ठव एवं औदार्य की विशेषताओं से विभूषित एवं प्रमाण सिद्ध वाणी। सौष्ठव का तात्पर्य है– शब्द वैचित्र्य तथा औदार्य का अर्थ है– अर्थगाम्भीर्य। भारवि यहाँ पर एक मनौवैज्ञानिक तथ्य उद्घटित करना चाहते हैं। वह यह कि सत्य कटु असह्य होता है। और सत्य निवेदन करते समय वाणी के कठोर होने की सम्भावना रहती है। परन्तु वनेचर एक संयमित तथा आत्मनियंत्रण करने में सर्वदा समर्थ है। इसलिए ऐसे समय में भी वनेचर की वाणी कठोर एवं कटु नहीं हुई अपितु सौष्ठव गुण अर्थात् शब्द सौन्दर्य से युक्त रही। दूसरी विशेषता है अर्थ गौरव अर्थात्–अर्थगाम्भीर्य। कहने का तात्पर्य यह है कि गम्भीर प्रसंग के अनुरूप ही अर्थ की गम्भीरता बनी रही। वनेचर ने अनावश्यक, निरर्थक एवं व्यर्थ शब्दों का प्रयोग कदापि नहीं किया। वनेचर द्वारा कहा गया प्रत्येक शब्द सार्थक था जिससे युधिष्ठिर को उनकी बात को सुनने व समझने में किसी भी तरह की भ्रान्ति या संशय या कठिनाई न हो। साथ ही वनेचर की वाणी प्रमाणिक तथ्यों से युक्त थी। उसमें एक भी ऐसी नहीं थी जो अनेक प्रकार से पुष्ट प्रमाण सिद्ध एवं युक्ति युक्त न हो।

अतः शत्रुओं का नाश करने के लिए उपाय करने की इच्छा रखने वाले महाराज युधिष्ठर की गुप्तरीति से आज्ञा पाकर वनेचर वहाँ सबकुछ समझकर शब्द और अर्थ के गुणों से परिपूर्ण इन वाक्यों को युधिष्ठिर से कहा।

"हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।"[8] किरात0 (1/4)

(ऐसा वचन दुर्लभ है तो हितकर भी हो और मनोहर भी हो) वनेचर के मन में यह विचार आया कि सत्य बात का निवेदन करने से एवं दुर्योधन की सुदृढ़ राजव्यवस्था का वर्णन करने से युधिष्ठिर को दुःख होगा। तथा इस बात की सम्भावना है कि वे क्रोध में आ जाय। कदाचित् मुझे दण्ड भी दे दें। इसलिए कुछ कहने के पूर्व युधिष्ठिर के क्रोध से बचने के लिए वह क्षमा याचना करते हुए वह कहता है कि मेरे द्वारा कही गई बात चाहे अप्रिय लगे या प्रिय आप उसको सहन करें क्योंकि कल्याणकारी तथा मन को अच्छे लगने वाले वचन अत्यन्त कठिनता से प्राप्त होते हैं। इसलिए कहा गया है– "अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः'। 'सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं, नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः'।[9] किरात0 (1/5)

यदि मंत्री एवं अन्य हितैषी जन राजा को सत्परामर्श नहीं देते तो वह मंत्री आदि कुत्सित अर्थात् बुरा मंत्री होता है। तथा जो स्वामी अपने मंत्रियों अथवा हितैषियों के सत्परामर्श को शान्ति एवं धैर्यपूर्वक नहीं सुनता है। तथा यदि कटु सत्य हो तो उसे सुनकर कुपित हो जाता तथा मंत्री परस्पर अनुकूल रहते हैं। एक दूसरे की बात को समझते हों तभी राज्य में एवं राजा के पास समस्त सम्पत्तियाँ व वैभव रहते हैं।

इस कथन में भारवि के राजनीतिक ज्ञान की झलक मिलती है। वनेचर युधिष्ठिर से यह अपेक्षा रखता है कि उसके द्वारा कहा गया विवरण ध्यानपूर्वक सुने भले ही वह विवरण सत्य एवं कटु हो। जब दुर्योधन की यथार्थ वस्तुस्थिति से युधिष्ठिर परिचित होंगे तभी उसका समुचित प्रतिकार कर सकेंगे। इसीलिए वनेचनर यह स्पष्ट कर रहा है कि यदि मंत्री तथा राजा में विचार वैमत्य रहेगा तो राज्य में सुख तथा समृद्धि कदापि सम्भव नहीं है।

'वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः'।[10] किरात0 (1/8) (नीच व्यक्ति से मित्रता के स्थान पर महापुरुष से विरोध होना भी अधिक अच्छा है।)

युधिष्ठिर से पराजय की आशंका से ग्रस्त होने के कारण वह कुटिल दुर्योधन आपको (युधिष्ठिर को) जीतने की इच्छा से अपने दान इत्यादि गुण सम्पत्ति से अपना यश फैला रहा है। दुष्टजनों के साथ संसर्ग की अपेक्षा सज्जनों के साथ विरोध भी श्रेष्ठ होता है क्योंकि सज्जनों के साथ विरोध से ऐश्वर्य भी अभिवृद्धि होती है।

कहने का भाव है कि सज्जन पुरुषों के साथ जो व्यक्ति विरोध करेगा वह सज्जन पुरुष को पराजित करने के लिए उसे अधिक गुणी दिखाने के लिए दयालुता, दानशीलता तथा उदारता का प्रदर्शन करेगा। इस प्रकार कवि यह कहना चाहता है कि महात्माओं के साथ विरोध करने पर उनके सद्गुणों को अपनाने से दुष्ट व्यक्ति का भी कल्याण होता है। जबकि दुष्ट व्यक्ति के साथ वैरभाव होने पर दुष्टजन की तरह ही वह अन्याय अनीति के मार्ग का अनुगमन करेगा जिससे किसी का कल्याण नहीं होने वाला है। वनेचर इसलिए दुष्टजन के संसर्ग की अपेक्षा महात्माओं के साथ विरोध को श्रेष्ठ निरूपित करता है।

'न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्'।11 किरात0 (1/11)

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

वनेचर कहता है कि–दुर्योधन धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थों का सेवन समय निर्धारित कर सकता है। समय का उचित विभाजन करके वह तीनों का सेवन अनासक्त भाव से प्रजा के कल्याणार्थ एवं लोकानुरंजन की भावना से करता हैं यद्यपि यह भी सच है कि धर्म, अर्थ तथा काम परस्पर विरोधी हैं परन्तु दुर्योधन के द्वारा समानभाव से सेवन किये जाने से मानों मित्रता को प्राप्त होकर आपस में टकराते नहीं हैं।

लोक में ऐसा देखा जाता है कि धर्म आराधना में संलग्न व्यक्ति अर्थ तथा काम से अनासक्त हो जाता है। अर्थोपार्जन में संलग्न व्यक्ति धर्म से विमुख होता जाता है तथा कामोपभोग में संलग्न व्यक्ति धर्म अर्थ से प्रायः विमुख हो जाता है। इसलिए इन तीनों को परस्पर विरोधी कहा जाता है किन्तु दुर्योधन के द्वारा इन तीनों का सेवन आनुपातिक पद्धति से किये जाने पर उनका परस्पर विरोध भाव समाप्त हो जाता है। किसी एक में संलग्न व्यक्ति जघन्य कहा जाता है। जैसा कि कहा गया है–'धर्मार्थकामाः सममेवसेव्याः यो हयोकसक्तः स जनो जघन्यः'।

'अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता'।[12] किरात0 (1/23)

दुर्योधन समस्त भूमण्डल का राजा है जिससे राजकोष की धन सम्पत्ति, समस्त सेना इत्यादि का स्वामी है, परन्तु वह युधिष्ठिर से भयभीत रहता है। वनेचर इस श्लोक में यह स्पष्ट कर रहा है कि राज्य से रहित युधिष्ठिर आज भी सबल है। क्योंकि उनके पास अर्जुन धनुर्धारी तथा गदायुद्ध पारंगत भीम इत्यादि अन्य लोगों के साथ–साथ साक्षात् धर्म भी उनके साथ है। अतः आप अपने आप को शक्तिहीन न समझें। युधिष्ठिर की शक्ति, बल और सामर्थ्य से समस्त भूमण्डल का स्वामी दुर्योधन भी भय से व्याकुल रहता है। दुर्योधन को इस बात का भय है कि कहीं युधिष्ठिर आक्रमण कर मेरा राज्य मुझसे छीन लें। इसी को मन में धारण किये हुए अशान्त रहता है।

भारवि इस सूक्ति के माध्यम से यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि बलवान व्यक्ति के साथ विरोध नहीं करना चाहिए। क्योंकि बलशाली के साथ विरोध का अंत दुःख होता है। इसलिए दुर्योधन का अन्त भी बुरा होगा। दुर्योधन के प्रताप से जहाँ राजा लोग लुप्त हो गये हैं। जहाँ आगे भी किसी राजा में इतनी शक्ति नहीं कि दुर्योधन को टाल सके। ऐसे समुद्रपर्यन्त भूमण्डल का शासन करता हुआ भी वह आप से (युधिष्ठिर) डरता है, क्योंकि अपने से बलिष्ठ के साथ विरोध करना कभी न कभी दुःख ही ले आता है।

'प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः।'[13] किरात0 (1/23)

वनेचर के कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्तचर के द्वारा सूचनापरक वचनों की उपयोगिता एवं सार्थकता तभी है जब उन सूचनाओं पर अविलम्ब रूप से उचित कार्यवाही की जाय क्योंकि विलम्ब से की गयी कार्यवाही से उनका यथोचित लाभ नहीं मिल पाता है जैसा कि कहा गया है– कालोपिबति हि तद्रसः। अर्थात् कालक्षेप कार्य के रस को पी जाता है अर्थात् अभीप्सित फल नहीं मिल पाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. विधाय रक्षान् परितः परेतरा न शङ्कितोकारमुपैति शङ्कितः। क्रियापवर्गेष्वनुजीविसात्कृताः कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पदः।। किरात०, (1/14)
2. स यौवराज्ये नवयौवनोद्धतं निधाय दुःशासनमिद्धशासनः। मखेष्वखिन्नोऽनुमतः पुरोधसा श्रिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम्।। किरात०,(1/22)
3. श्री बदरीनारायण मिश्र, किरात०, पृ०सं०–72
4. इत्युक्तवन्तं व्रज साधयेति प्रमाणयन्वाक्यमजातशत्रोः। प्रसेदिवांसं तमुपाससाद वसन्निवान्ते विनयेन जिष्णुः।। किरात०, (3/24) श्री बदरीनारायण मिश्र, किरात०, पृष्ठ संख्या–(79)
5. विशङ्कमानो भवतः पराभवं नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः। दुरोदरच्छद्मजितां समीहते नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः।। किरात०, (1/7) डॉ० शशांक चन्द्र, किरात०, पृ०सं०–21
6. अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलं..तदीयमास्थान निकेतनाजिरम्। नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः।। किरात०, (1/16) डॉ० रामसेवक दुबे, किरात०, (पृष्ठ संख्या–101)
7. किरात0 (1/3)
8. किरात0 (1/4)
9. किरात० (1/5)
10. किरात० (1/8)
11. किरात0 (1/11)
12. किरात०, (1/23)
13. किरात० (1/25)

*****

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*